P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/ SHRINKHALA : VOL-II * ISSUE-VI February-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

भारतीय लोक संगीत का स्वरूप (पर्वतीयजीवन के सामाजिक फलक पर लोकगीतों का महत्व)

आशा कृष्ण पाण्डे
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
संगीत विभाग,
हे0न0ब0 केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल

सारांश

मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों और सौन्दर्यबोध के विकास के आरम्भिक चरणों में सरिताओं, सुगन्धित पुष्पों, निर्झरशीतल समीर, ऋतुओं में परिवर्तन, बादल, चांदनी, रात, ऊषा, सन्ध्या इत्यादि प्राकृतिक पदार्थो और जीवन विषयक अनुभवों ने मानव मन में विभिन्न भावों को जन्म दिया। प्रकृतियापन के संघर्षो के कारण मनुष्य की चेतना व विचार शक्ति विकसित हुई, जिससे मनुष्य में आत्म–रक्षा के लिए सहयोग व सहकारिता की भावना उद्दीप्त हुई। धीरे–धीरे उसने समूह में चलना–फिरना, शिकार करना आरम्भ किया और शिकार के समय सफलता प्राप्त करने पर एक साथ उन्माद में चिल्लाकर, नाचकर, कूदकर विभिन्न प्रकार के गतिशील अंग संचालनों द्वारा वह अपने भावों को प्रकट करने लगा। मनुष्य की यही स्वाभाविक आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति ही साहित्य, संगीत आदि कलाओं का आदि श्रोत बनी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ''प्राकृतिक संगीत ही लोक संगीत की परिभाषा है।''1

मुख्य शब्द लोक संगीत, पर्वतीय जीवन

परिचय

मनुष्य ने बीजों को अंकुरित होते देखा तो इस तरह उसका कृषि कार्य से प्रथम परिचय हुआ। अपनी भोजन समस्या को हल करने के लिए मनुष्य सामूहिक दलों में रहकर कृषि व पशु–पालन करने लगा। जिसके फलस्वरूप धीरे–धीरे गांवों का जन्म हुआ। क्रमशः समाज का निर्माण हुआ। मनुष्य एक दूसरे के निकट आया, उसमें प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, ममता, स्नेह, ईर्ष्या, विरह, वियोग आदि नूतन भावनाओं की जागृति हुई तथा उसकी बुद्धि चेतना, स्मरण एवं विचार शक्ति भी विकसित हुई है और वह अपने भावों को व्यक्त करने के लिए रेखाओं, रंगों और संकेतों का प्रयोग करने लगा। तत्पश्चात् उसने शब्दों का आविष्कार किया।

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विदेशी तथा भारतीय विद्वानों में मतभेद है। ऋग्वेद में ही इस शब्द की प्राप्ति होन लगती है। 'ऋग्वेद' एवं 'अथर्ववेद' में इसका प्रयोग दो अर्थो दिव्य तथा पार्थिव में किया गया मिलता है। वाजसनेयी संहिता का प्रयोग भी समानार्थी प्रतीत होता है और यह प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों एवं 'वृहदारण्यक' तक में प्रचलित है। 'लोकायत–दर्शन' का 'लोक' शब्द भी दर्शन के क्षेत्र में एक विशिष्ट अर्थ की ओर संकेत करता है। भरतमुनि के 'नाट्यशात्र' में भी लोक–धर्म प्रवृत्ति की चर्चा है। मंगतमुनि कृत 'वृहदेशी' में भी 'लोकानां नरेद्राणां' का उल्लेख हुआ है। 'लोक' शब्द का प्रयोग वेद के समानान्तर भी मिलता है, जैसे गीता का ''अतोऽस्मि लोके वेदेच प्रथितः पुरूषोत्तम''[2] भी लोक और वेद दोनों को स्वीकार करता है। इसी प्रकार हिन्दी काव्य में भी 'लोक' शब्द के प्रयोग पाये जाते हैं। जैसे सूर के पदों में ''नंदनन्दन के नेह–मेह जिन लोक लीक–लोपी'' तथा लोक–वेद पतिहार पहरूवा तिनहू पे राख्यो न परव्योरी।[3] इसी प्रकार तुलसी की रचना में 'लोक कि वेद बडेरो'' तथा सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहू वेद न आन उपाऊ।[4]

पं0 ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार– ''देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक संगीत है।''[5] गुरू रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार– संस्कृति का सुखद संदेश ले जाने वाली कला है लोक संगीत।[6]

इसी संदर्भ में पैरी के विचार से ''लोक गीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में निवास करते हुए जब मानव में बुद्धि और भावनाओं के अंकुर फूटे तो अपनी अभिव्यक्ति के लिए उसने विकृत आलाप करने आरम्भ किये। यही आदि संगीत उसके शब्दों में लोकगीत है।''[7]

पण्डित जवाहर लाल नेहरू के विचार ''लोक संगीत में हमें उल्लास मिलता है, सांस्कृतिक वैभव देखने को मिलता है जो देश को एक सूत्र में बांधता है।''[8] इसी प्रकार शास्त्रीय गायन में कुमार गंधर्व जी ने लोक संगीत का अधिक प्रयोग किया है। लोक गीत के सम्बन्ध में उनके विचार निम्न हैं– ''साधारणतया लोकगीत की धुनें चार या पांच स्वरों में सीमित रहती हैं। उन्हीं में लोक धुनेंबद्ध होती हैं।''[9] पं0 ओंकारनाथ ठाकुर जी का कहना है कि ''लोक संगीत के माध्यम से समस्त विश्व में आत्मीयता और एकता की स्थापना की जा सकती है।''[10] इसी संदर्भ में निराला जी ने यह अभिमत प्रकट किया है कि ''हृदय की अनुभूतियां तरंग गति हो कर जब प्रकृति के मध्य बहने लगती है तो लोक संगीत का जन्म होता है।''[11]

इस प्रकार लोक संगीत मानव सभ्यता से जुड़ी हुई एक ऐसी कड़ी है जो मानव सभ्यता के विकास के साथ विकसित होती गयी और यह कंठ दर कंठ चली आ रही है। यह मौखिक परम्परा द्वारा जीवित रही और समय के साथ परिवर्तित होती गयी, इसमें संस्कार, भाषा, बोली, धर्म, आस्था, विश्वास, हर्ष–विषाद, सुख–दुख, संयोग–वियोग, हास्य–रूदन, प्रकृति दैनन्दित जीवानुभूतियों आदि का विशुद्ध एवं जीवन्त चित्रांकन रहता है। इसी संदर्भ में अरूण धर्माधिकारी जी के शब्दों में ''लोकसंगीत अथवा लोक गीत शैली शास्त्रीय नियमों एवं बन्धनों से सर्वथा मुक्त है। लोक संगीत उस सुरसुरी के समान है, जिसका लक्ष्य लोक कल्याण है।''[12]

भारत में संगीत को अनादि की सत्ता प्रदान की गयी है। संगीत का उद्‌गम मानव जाति के आविर्भाव के साथ ही हुआ है। परन्तु लिपिबद्ध रूप से संगीत की भारतवर्ष में विद्यमानता का प्रमाण वैदिक काल के वैदिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है। वेदों को अपौरूषेय अनादि एवं समस्त विधाओं का श्रोत माना गया है।

इस प्रकार लोक गीतों का प्रचलन हमारे समाज में काफी प्राचीन हैं। जन्म–विवाह, धार्मिक उत्सव, होली उत्सव, बसंत उत्सव इत्यादि के अवसर पर अलग–अलग गाये जाने वाले लोक गीत प्रचालित हैं जो कि उनके दैनिक जीवन की सहस्त्रों कठिनाईया को दुःख, दर्द इत्यादि को अपने लय–सुर से ढक लेते हैं। इन गीतों में पर्वतीय समाज के धर्म लोक–संस्कार, रीति–रिवाज, कार्य–व्यवहार, आशा–निराशा, सुख–दुख, राग व ताल आदि सभी के दर्शन होते हैं। यूं तो हमारे देश में लोक गीतों का अपार भण्डार है परन्तु प्रस्तुत शोध पत्र में कुछ प्रदेशों के लोक गीतों का वर्णन किया गया है–

भटियाली

इसे सबसे पुरातन प्रकार माना जाता है। इसमें बंगाल में प्रचलित प्रायः सभी प्रकार के लोकगीतों के तत्व मिलते हैं। भटियाली के साथ बंगाल में प्रचलित कीर्तन एवं टप्पा शैलियों का भी मल पाया जाता है। भटियाली सरल व संक्षिप्त है। यह मूलतः पूर्व बंगाल के नीचे अंचलों (जहां पानी जमा हो जाता है) का संगीत प्रकार है। जहां वर्षा ऋतु में जमीन पानी में डूब जाती है।

बाउल

यह बंगाल के किसी एक अंचल में सीमित नहीं है पूर्व बंग, उत्तर बंग, पश्चिम बंग मे यह समान रूप से लोकप्रिय है। इन गीतों की कोई विशेष स्वरावली नहीं है। विभिन्न आंचलिक गीतों का प्रभाव इसमें मिलता है। जहां पूर्व और उत्तर बंगाल के बाउल में 'भटियाली' और 'सारि' गायन का चलन दिखाई देता है। वहां पश्चिम बंगाल के 'बाउल' में झूमुर और कीर्तन का प्रभाव दिखाई देता है। बर्हिजीवन के लोकगीतों की शुरूआत कुछ खास स्वरों से होती हैं। जैसे–

1. सारे म प, सारे ग प स्वरों के साथ
2. सा ग म प तथा रे ग म प स्वरों के साथ आदि।

इसी प्रकार राजस्थान के अन्तर्गत 'टोंक' नमक जिल के पास 'डिग्गी मालपुरा' नामक स्थान है। डिग्गी में पूजे जाने वाले देवता श्री कल्याण जी महाराज का प्रशस्ति गीत इस प्रकार है–

सा सा सा रे रे रे रे रे सा म र रे – रे रे सा सा सा .....
द र वा जे नौ व त बा जे म्हा रा दिगीऽ पु री का राजा ऽऽऽ

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाती है। यहां पर हम देखते हैं कि सा रे म इन्हीं तीन स्वरों का प्रयोग हो रहा है। इसी प्रकार एक प्रचलित गुजराती प्रार्थना की धुन है, जिसमें तीन स्वरों का प्रयोग हुआ है।

हरियाणा राज्य का एक बहुप्रचलित गीत प्रकार 'झूलागीत' है, इसे सावन में गाया जाता हैः

सा सा सा	रेग् रेग् रे	सा रेग् रेग्	रे – रे
आ ई रो	साऽ सऽ र	सा वर नऽ	ती ऽ ज
गरे सा सा	धसा रेग् रेसा	रेग् रेग् रे	सा सा –
हिऽ डो ला	गाड़ देऽ नीऽ	चंऽ पाऽ बा	ग में –

उपर्युक्त पंक्तियों में आभोगी राग की झलक मिलती है। बंगाल का प्रभाती गीत इसे गाकर मुहुर्त में चारण, बाउल आदि सम्प्रदाय के लोग घरों के सामने घूमते हुए सुप्रभात का संदेश देते है जो इस प्रकार है–

ग – – ग रे – सा – नि् रे सा सा नि सा ध नि
जा ऽ ऽ गो जा ऽ गो ऽ नौ ऽ ग र बा ऽ सी ऽ
सा म म – – – प म ग – सा रे म – – –
नि ऽ शी ऽ ऽ ऽ ऊ ब शा ऽ ऽ न रे ऽ ऽ ऽ

इस गीत में खमाज थाट के कई रागों की झलक दिखाई देती है। इसी प्रकार महाराष्ट्र की स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला औबी गीत इसमें ताल का कोई बन्धन नहीं होताः

नि नि सा रे ग रे ग प म ग रे ग रे ग ग प ध म म ग रे नि नि
प हि ली झी ऽ ओ ऽ ऽ ऽ वो प हि ला म झाऽ ने म ऽ ऽ तु ले
सा रे रे ग रे ग प म ग ग म ग रे रे ग रे नि सा – –
शे ज व ली ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ आ।

उपर्युक्त गीत में बिलावल है के अन्तर्गत देवगिरी बिलावल राग के अंश मिलते हैं। इस राग का उठाव इस प्रकार है नि सा ध नि सा रे ग म ग प म ग ग रे सा। इसके आखरी टुकड़े में जजैवन्ती की झलक भी दिखाई

देती है। इसी प्रकार उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र की खड़ी होली गीत जो कि निम्नलिखित हैं–

शिव के मन माही बसे काशी,
शिव के मन मोही बसे काशी।
आधे काशी में वामन बनिया,
आधे काशी में सन्यासी।[13]

स्थाई ताल चांचर

ग – –	ग – प –	ग – प	ग – ग –
के ऽ ऽ	म ऽ न ऽ	मा ऽ ऽ	हि ऽ ब ऽ
ग प –	ग – – रे	रे – –	ग – रे –
से ऽ ऽ	का ऽ ऽ ऽ	शी ऽ ऽ	शि ऽ व ऽ
ध सा –	सा – सा –	सा रे –	सा – ध सा
के ऽ ऽ	म ऽ न ऽ	मा ऽ ऽ	हि ऽ ब ऽ
ग रे –	रे – ग रे	रे – –	ग – रे –
से ऽ ऽ	का ऽ ऽ ऽ	शी ऽ ऽ	शि ऽ व ऽ
			– – – –
			ऽ ऽ ऽ ऽ

अंतरा

ग – –	ग – रे –	ग प –	प – प –
आ ऽ ऽ	घे ऽ ऽ ऽ	का ऽ ऽ	शी ऽ मे ऽ
ग – प	ग – ग रे	रे रे –	रे – प ग
बा ऽ ऽ	म ऽ न ऽ	ब नि ऽ	या ऽ ऽ ऽ
ग – –	ग – प –	ग – प	सा – सा ध
आ ऽ ऽ	घे ऽ ऽ ऽ	का ऽ ऽ	शि ऽ में ऽ
ग प –	ग – – रे	रे – –	ग – रे –
स ऽ ऽ	न्या ऽ ऽ ऽ	सी ऽ ऽ	शि ऽ व ऽ
सा ध –	सा – सा –	सा रे –	
के ऽ ऽ	म ऽ न ऽ	मा ऽ ऽ	हि ऽ ब ऽ
ग – रे	रे – ग रे	रे – –	
से ऽ ऽ	का ऽ ऽ ऽ	शी ऽ ऽ	

इस गीत में काशी नगरी जो कि शिव की हमेशा प्रिय स्थली रही है जो उनके हृदय में बसा है जो तीर्थ स्थलों का राजा कहा जाता है। शिव का सतत् निवास काशी को ही माना गया है। जहां वामन वनियां और सन्यासियों की बहुलता है जो शिव के पुजारी तथा सेवाकारक है और अष्टसिद्धि को पूजते हैं का वर्णन किया गया है। गीत में आये स्वर–समुदाय ध सा रे ग प ग रे सा, सा ध सा रे ग प ग रे सा'' जो कि पूर्णतया भूपाली रोग के द्योतक है।

इसी प्रकार अन्य प्रदेशों के लोकगीतों में भी राग ताल का छन्द स्पष्ट दिखाई देता है। कुमाऊँ, गढ़वाल, हिमाचल, राजस्थान, जम्मू–कश्मीर आदि के लोक गीतों में दुर्गा मांड़, झिझोटी आदि कूट–कूट कर भरा पड़ा है। इन गीतों में लय का सहज समावेश होता है। दादरा कहरवा जैसे सरल एवं बराबर विभाग वाली तालों का प्रयोग होता है। कुछ विशेष पकार के गीतों के साथ पंजाबी अद्धा धुमाली, दीपचंदी आदि जटिल और विषम विभाग वाली तोलों का भी भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है। इस प्रकार वदिक काल से ले कर आज तक संगीत का प्रयोग जितना कि धार्मिक कृत्यों में आवश्यक रहा है उतना ही लौकिक समारोहों में भी उसका महत्व रहा है।

आज भारतीय समाज को एक सूत्र में में बंधने में लोक गीतों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि लोक गीत हमारी संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। आज समाज में आधुनिक उपकरणें का प्रभाव बढ़ रहा है जिसके कारण लोक गीतों का स्वरूप में बदलाव आ रहा है, इसलिए आज आवश्यकता है लोकगीतों को उसके बदले स्वरूप के साथ अपनाकर सहजने और सुरक्षित रखने की न कि अपने संस्कार सस्कृति और संगीत को भुलाने को। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोक गीतों की संगृहीत कर इन्हें रिकार्ड कर लिया जाय, जिससे लोकगीतों की सम्पदा, सुरक्षित हो जो भावी पीढ़ी के लिए तथा शोधार्थियों के मार्ग दर्शन हेतु सहायक सिद्ध हो सके।

संदर्भ

1. डा0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ 167
2. लक्ष्मी नारायाण गर्ग, निबन्ध संगीत, पृ0 73
3. उद्घृत वही,
4. उद्घृत वही,
5. डा0 गणेश पसाद गुप्ता, भारतीय लोक संगीत,पृ0 19
6. वही,
7. गुरू रविन्द्र नाथ टैगोर, बंगाल का संगीत, पृ0 108
8. त्रिलोचन पाण्डे, कुमाऊँ का लोक साहित्य, पृ0 18
9. छायानट पालिका अंक 78, पृ0 35
10. वही, पृ0 34
11. अरूण धर्माधिकारी छायानट पत्रिका, अंक 78, पृ0 32
12. वही,
13. डा0 आशा पाण्डे, कुमाऊँ क्षेत्र के होली गीत संगीत परक विश्लेषण, पृ0 222